

## विचार बिन्दु

बुद्धि से विचार कर किए गए कर्म ही सफल होते हैं। -महाभारत

## तरसेंगे हम पीने के पानी को

पा... जीवन की वह मूलभूत आवश्यकता है जिससे मानव, पशु, और सारा जीव-जंतु जुड़ा हुआ है। परंतु आज जब हम शुद्ध पानी की बात करते हैं, तो यह केवल एक भौतिक आवश्यकता नहीं रह जाती; यह हमारे सभ्य जीवन का दर्पण बन जाती है। जिस देश में नदियाँ बहती हैं और वर्षा होती है, वहाँ भी अनेक स्थानों पर लोग उस एक गिलास साफ पानी के लिए तरस रहे हैं। यह त्रासद स्थिति सिर्फ संसाधन की कमी नहीं, बल्कि नीतियों, प्रवर्तन, नेतृत्व, और समाज की प्राथमिकताओं की विफलता का संकेत है।

भारत विविधता की भूमि है। हिमालय की हिम-जलधाराएँ, समुद्रतटों की वर्षा-पवन प्रणालियाँ, पश्चिमी और पूर्वी नदी घाटियाँ सब मिलकर जल की एक समृद्ध तस्वीर पेश करते हैं। फिर भी स्नान के लिए पानी है, खेती के लिए पानी है, उद्योगों को पानी मिल जाता है, किंतु पीने के शुद्ध जल की उपलब्धता असमान और अक्सर अपर्याप्त है। शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्र पीने के पानी की चुनौती से जूझ रहे हैं, पर कारण और प्रभाव भिन्न हैं। शहरी क्षेत्रों में स्वच्छता, पाइपलाइन नेटवर्क, रिचार्ज की कमी, और प्रदूषण बड़े कारण हैं; ग्रामीण क्षेत्रों में पक्की इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमी, भूजल का प्रदूषण, तथा जल-व्यवस्थापन की अपर्याप्त समझ मुख्य बाधाएँ हैं।

भूजल पर अत्यधिक निर्भरता ने समस्या को और जटिल बना दिया है। खेती में अनियंत्रित बोरेलव ड्रिलिंग, उद्योगों का अतिव्यापी उपयोग, और शहरी उपभोक्ता मांग ने पानी के स्तर को लगातार कम कर दिया है। परिणामस्वरूप नल सूखते हैं, हैडपम्प गड़बा जाते हैं, और जो मिल भी जाता है वो अक्सर प्रदूषित। प्रदूषण का स्रोत भी बहुस्तरीय है: औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि रसायन (कीटनाशक और उर्वरक), घरेलू सीवेज, तथा ठोस अपशिष्ट जो जल स्रोतों में जा कर जल को जहरीला बना देते हैं। नदी और झीलें न केवल गंदी होती जा रही हैं, बल्कि हमारे औचित्यहीन उपयोग से कमजोर भी होती जा रही हैं।

जल संकट केवल भौतिक अभाव नहीं है; यह असमानता भी है। शहरों के धनी मोहल्लों में पानी की उपलब्धता बेहतर होती है जबकि श्रृंगी-झोपड़ी और ग्रामीण ग्रामीण क्षेत्र अभी भी रोज पानी लाने के लिए लंबी दूरी तय करते हैं। यह असमानता स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। पानी से जुड़ी बीमारियाँ डायरिया, स्कर्वी नहीं, बल्कि जलीय रोगों की पुनरावृत्ति बच्चों की मृत्युदर और काम करने की क्षमता को कम करती हैं। महिलाएँ और बालिकाएँ पानी लाने की जिम्मेदारी में समय खो देती हैं, जिससे उनके शिक्षा और सामाजिक भागीदारी प्रभावित होती हैं।

समस्या की जड़ में जननीति और कार्यान्वयन की कमी भी है। कई योजनाएँ और नियम तो बने हैं, पर उनका क्रियान्वयन कमजोर है। जलमंडल पर आधारित योजना, लोकभागीदारी, और संस्थागत सहकारिता की आवश्यकता है। स्थानीय समाजों को सशक्त करके, पानी का सुरक्षित प्रबंधन और संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है। केवल नीतियाँ बनाना पर्याप्त नहीं; निगरानी, पारदर्शिता, और जवाबदेही उतनी ही जरूरी है ताकि योजना जमीन पर दिखे और असर दे।

हमारे पास समाधान भी हैं, और वे तकनीकी से लेकर पारंपरिक तक विस्तारित हैं। सबसे पहले जल संरक्षण और पुनः उपयोग को प्राथमिकता देनी होगी। वर्षा जल संचयन सरल और प्रभावी उपाय है, जिसे शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। छतों, सड़कों और सार्वजनिक स्थलों पर जल संचयन संरचनाएँ बनाकर वर्षा के पानी को रोक कर भूमिगत जलस्रोतों को रिचार्ज किया जा सकता है। साथ ही छोटे बाँध, तालाब, और अपशिष्ट जल के उपचार के बाद पुनः उपयोग, विशेषकर बागवानी और उद्योगों के लिए, पानी की मांग को कम कर देते हैं।

हमारे पास समाधान भी हैं, और वे तकनीकी से लेकर पारंपरिक तक विस्तारित हैं। सबसे पहले जल संरक्षण और पुनः उपयोग को प्राथमिकता देनी होगी। वर्षा जल संचयन सरल और प्रभावी उपाय है, जिसे शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। छतों, सड़कों और सार्वजनिक स्थलों पर जल संचयन संरचनाएँ बनाकर वर्षा के पानी को रोक कर भूमिगत जलस्रोतों को रिचार्ज किया जा सकता है। साथ ही छोटे बाँध, तालाब, और अपशिष्ट जल के उपचार के बाद पुनः उपयोग, विशेषकर बागवानी और उद्योगों के लिए, पानी की मांग को कम कर देते हैं।

हमारे पास समाधान भी हैं, और वे तकनीकी से लेकर पारंपरिक तक विस्तारित हैं। सबसे पहले जल संरक्षण और पुनः उपयोग को प्राथमिकता देनी होगी। वर्षा जल संचयन सरल और प्रभावी उपाय है, जिसे शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। छतों, सड़कों और सार्वजनिक स्थलों पर जल संचयन संरचनाएँ बनाकर वर्षा के पानी को रोक कर भूमिगत जलस्रोतों को रिचार्ज किया जा सकता है। साथ ही छोटे बाँध, तालाब, और अपशिष्ट जल के उपचार के बाद पुनः उपयोग, विशेषकर बागवानी और उद्योगों के लिए, पानी की मांग को कम कर देते हैं।

हमारे पास समाधान भी हैं, और वे तकनीकी से लेकर पारंपरिक तक विस्तारित हैं। सबसे पहले जल संरक्षण और पुनः उपयोग को प्राथमिकता देनी होगी। वर्षा जल संचयन सरल और प्रभावी उपाय है, जिसे शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। छतों, सड़कों और सार्वजनिक स्थलों पर जल संचयन संरचनाएँ बनाकर वर्षा के पानी को रोक कर भूमिगत जलस्रोतों को रिचार्ज किया जा सकता है। साथ ही छोटे बाँध, तालाब, और अपशिष्ट जल के उपचार के बाद पुनः उपयोग, विशेषकर बागवानी और उद्योगों के लिए, पानी की मांग को कम कर देते हैं।

कृषि में पानी की बचत के लिए ड्रिप इरिगेशन, सूखी फसल चक्र और जल कुशल फसलें अपनाने को आवश्यकता है। किसान को प्रशिक्षित कर, सस्ता और उपलब्ध तकनीक प्रदान करके बड़े पैमाने पर जल उपयोग को घटाया जा सकता है। सिंचाई की योजना बनाते समय स्थानीय जल-स्तर और मौसमी पैटर्न का ध्यान रखना होगा, ताकि जमीन की उर्वरता और जल-स्तर दोनों सुरक्षित रहे।

नियमन और प्रदूषण नियंत्रण का कठोर पालन जरूरी है। उद्योगों और कस्बों से निकलने वाले सीवेज का उपचार अनिवार्य बनाना होगा। नदी घाटियों और जलाशयों के किनारों पर अतिक्रमण रोका जाए, और गंदगी ढेर करने वाले स्थानों पर निगरानी बढ़ाई जाए। सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा के लिए जल गुणवत्ता मानक सख्त किए जाएँ और उनका पालन सुनिश्चित करने के लिए स्वच्छता सार्व तंत्र को प्रभावी बनाना होगा।

जल प्रशासन में लोगों की भागीदारी अहम है। जल उपयोग, संरक्षण और वितरण से जुड़े निर्णयों में स्थानीय समुदायों को शामिल करना पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय कर सकता है। पंचायत स्तर पर जल समितियाँ काम कर सकती हैं जो पानी के उपयोग के नियम बनाएँ, रिचार्ज परियोजनाओं पर निगरानी रखें और हितधारकों के बीच समन्वय स्थापित करें। शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों से लोग सरल व्यवहारिक बदलाव जैसे नल बंद रखना, गंदा पानी न बहाना, और घरेलू उपचार अपनाना करने के लिए प्रेरित होंगे।

प्रौद्योगिकी भी इस संकट में सहायक हो सकती है। सस्ती जल परीक्षण किटें, स्मार्ट मीटरिंग, और डेटा-आधारित जल प्रबंधन से आपूर्ति और मांग का संतुलन बनाया जा सकता है। उपग्रह और जियो डेटा भूजल स्तर की निगरानी में मदद करते हैं और समय पर हस्तक्षेप संभव बनाते हैं। पर तकनीक तभी फलदायी होगी जब वह स्थानीय संदर्भ में लागू हो और समुदाय के हाथ में सेवा की तरह पहुँचे, न कि महँगी और जर्जर परियोजनाओं की तरह।

अर्थव्यवस्था भी एक कारक है। पानी को सस्ती और असीम संसाधन मानकर उपयोग करना महँगा पड़ रहा है। पानी की असल कीमत और उसकी बाह्य लागतों (जैसे स्वास्थ्य, पर्यावरण, पुनर्स्थापन) को समझ कर नीति निर्माताओं को पानी के प्रबंधन के आर्थिक मांडल बनाए जाने चाहिए। टैक्स नीति, सब्सिडी का निर्धारण और पानी के उचित मूल्य निर्धारण से गैर-जरूरी उपयोग को रोका जा सकता है, किंतु इसके साथ सामाजिक सुरक्षा की भी व्यवस्था आवश्यक है ताकि गरीबों की आजीविका प्रभावित न हो।

हमारे सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल भी पानी की रक्षा के लिए प्रेरणा दे सकते हैं। इतिहास में जल-पूजन, तालाब, और पवित्र नदियों की परंपरा रही है जो केवल जल का धार्मिक महत्व ही नहीं, सामाजिक साझा करने का बोध भी देती है। इस संवेदनशीलता को फिर से जगाकर और इसे आधुनिक सबक के साथ जोड़कर हम पानी के प्रति सम्मान और संरक्षण का भाव बढ़ा सकते हैं।

यदि हम आज भी देर करें तो आने वाली पीढ़ियाँ वही सवाल करेंगी जो हमने पूछा: हमने क्या किया? क्या हमने अपने नदियों, तालाबों और भूमिगत जल को बचाया? जवाब तभी सकारात्मक होगा जब नीति, तकनीक, समुदाय और संस्कृति एक साथ काम करें। पानी के हर एक बूंद का महत्व समझें; नल से बहती पानी की हर बूंद की कीमत जानें; वर्षा को रोकें नहीं, सहायक; और अपने बच्चों को पानी का सम्मान सिखाएँ। तभी हम उस दिन से बच पाएँगे जब सचमुच हर गली, हर घर में “तरसेंगे हम पीने के पानी को” केवल एक कड़वी याद न बन कर एक चेतावनी ही बनी रहे।

-अतिथि संपादक  
अविनाश जोशी,  
वरिष्ठ पत्रकार एवं कॉरपोरेट सलाहकार



मणिमाला शर्मा

एक समय जल-संरक्षण की मिसाल रहा जयपुर आज अति-दोहित भू-जल, प्रदूषण और अतिक्रमण के बोझ तले कराह रहा है। सवाल यह है कि क्या शहर अपनी खोई हुई जल-स्मृति को वापस पा सकेगा।

हम एक ऐसे आत्मघाती और संवेदनहीन दौर में जी रहे हैं जहाँ प्यास से तड़पते गले और सूखती नदियाँ भी हमारी सोई हुई चेतना को जगाने में नाकाम साबित हो रही हैं। हर साल पांच जून को पर्यावरण दिवस के नाम पर रस्मी तौर पर कुछ सरकारी पौधे रोप देना, वालतुकूलित कपड़ों में बैठकर जल संकट पर चिंता जताना और प्रकृति-प्रेम का ढोंग रचना हमारी आदत बन चुकी है। लेकिन इस पाखंड की ओट में छिपा डालना सच यह है कि जब हम मंचों से देते हैं कि खोखली दुहाई दे रहे होते हैं, तब तक राजधानी जयपुर की एक बड़ी आबादी पानी की एक-एक बूंद के लिए सड़कों पर टैकों के पीछे भागने को अभिशप्त हो चुकी होती है। शहर अब पूरी तरह कंक्रीट के जंगल में बदली होने के कगार पर पहुँच चुका है। पहले चारों ओर हरियाली

दिखाई देती थी वही अब बहुमंजिली इमारतों ने हरियाली की जगह ले ली है। हरियाली अब बस बालकनी और छतों पर तखे हुए गमलों में सिमट कर रह गई है। इसका मुख्य संकट जल संकट के रूप में सामने आया है। जयपुर का जल संकट अब कोई दूर की कौड़ी या भविष्य की चेतावनी नहीं है; यह हमारे वर्तमान का वह जलता हुआ यथार्थ है जो हमारी चौखट तक आकर हमें निगलने को तैयार खड़ा है। इस संकट का सबसे खतरनाक चेहरा देखा जा रहा है जो हमारी चौखट तक आकर हमें निगलने को तैयार खड़ा है। इस संकट का सबसे खतरनाक चेहरा देखा जा रहा है जो हमारी चौखट तक आकर हमें निगलने को तैयार खड़ा है।

इस रिपोर्ट के चौकाने वाले आधिकारिक आंकड़े बताते हैं कि जयपुर जिला पूरी तरह अति-दोहित यानी क्षमता से अधिक शोषित की श्रेणी में आ चुका है। इस रिपोर्ट के चौकाने वाले आधिकारिक आंकड़े बताते हैं कि राजस्थान के कुल तीन सौ दो भू-जल क्षेत्रों में से सत्तर प्रतिशत से अधिक यानी दो सौ चौदह क्षेत्र अति-दोहित यानी क्षमता से अधिक शोषित की श्रेणी में आ चुके हैं। जयपुर शहर के भीतर और बाहरी औद्योगिक क्षेत्रों में पानी का दोहन इसकी प्राकृतिक पुनर्भरण क्षमता से कई गुना ज्यादा है। हम पताल से लगातार पानी खींच रहे हैं, जिसे वैज्ञानिक भाषा में भू-जल का झूठ खनन कहा जाता है। राज्य में भू-जल निकालने की रफतार इसके रीचार्ज होने की रफतार से 1.49 फीसदी अधिक है। यानी हम आने वाली पीढ़ियों के हिस्से का पानी आज ही निचोड़ रहे हैं। हम केवल अपना आज

नहीं उजाड़ रहे, बल्कि अपनी आने वाली पीढ़ियों के हिस्से का जीवन भी आज ही खींचकर खत्म कर रहे हैं।

इस भयानक तबाही का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने आधुनिकता के नशे में चूर होकर जयपुर की सदियों पुरानी जल-प्रणालियों की बेरहमी से हत्या कर दी।

महाराजा सवाई जयसिंह और उनके बाद के दूरदर्शी शासकों ने जब इस शहर को बसाया था, तो इसके जल प्रबंधन के लिए एक अभूतपूर्व ढांचा तैयार किया था। इतिहासकारों के अनुसार, जयपुर के परकोटे और उसके आस-पास पानी सहेजने के लिए छह सौ से अधिक कुआँ और बेजोड़ बावडियों का एक ऐतिहासिक जाल बिछाया गया था। लेकिन तथाकथित स्मार्ट और आधुनिक बनने की होड़ में हमने क्या किया? हमने उन छह सौ ऐतिहासिक जल-स्रोतों को जमींदोज कर दिया। आज हालत यह है कि उन छह सौ जल स्रोतों में से आज गिनती की वीस बावडियाँ भी ठीक से सांस नहीं ले पा रही हैं। प्ला मीणा का कुंड, सागर बावड़ी या चोला बावड़ी जैसे चंद बची हुई धरोहरें भी आज पानी सहेजने के बजाय सिर्फ पर्यटन का केंद्र बनकर रह गई हैं। जबकि बाकी की सैकड़ों बावडियों को हमने कचरापर बना दिया या उन पर बहुमंजिली इमारतें खड़ी कर दीं। जब पूरे शहर की जमीन पर कंक्रीट और डामर की अपेक्ष परत बिछ जाएगी, तो मानसून का पानी धरती के भीतर जाएगा कैसे?

द्रव्यवती नदी को संवराने के नाम पर उसे कंक्रीट के नाले में बदल दिया गया, और रामगढ़ बांध से लेकर आमेर की झीलों के भराव क्षेत्र पर भू-माफियाओं ने नेताओं और नौकरशाहों

की साठगांठ से कब्जा कर लिया। यही वजह है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण को राज्य के लचर और ढीले भू-जल नियमों पर सख्त धरौड़ी चलाना पड़ा और उनके दिशा-निर्देशों को खारिज करना पड़ा। आज स्थिति यह है कि मानसून की थोड़ी सी बारिश भी जयपुर की सड़कों को दरिया बना देती है क्योंकि पानी के पास जमीन के भीतर जाने का कोई रास्ता ही नहीं बचा है। हैरानी और क्षोभ की बात यह है कि इस पूरे जल संकट की बहस को चालाकी से केवल आम आदमी को व्यक्तिगत जिम्मेदारी बतकर छोड़ दिया जाता है। परकोटे के नागरिक से कहा जाता है कि वह नहाते समय बाटोटी का इस्तेमाल करे या ब्राश करते समय नल बंद रखे; जो कि नागरिक चेतना के स्तर पर बिल्कुल सही और जरूरी भी है।

लेकिन जयपुर के आसपास की उन विशाल व्यावसायिक और औद्योगिक इकाइयों का क्या, जो हर दिन जो एक लीटर शौतल प्या, एक कपड़ा या एक टन कागज बनाने के लिए जमीन के सोने से लाखों लीटर पानी डकार जाती हैं? उद्योगों द्वारा फैलाए जा रहे इस जानलेवा जल-निशान पर नीति-निर्माता हमेशा रहस्यमयी चुप्पी साध लेते हैं। वार्षिक भू-जल गुणवत्ता रिपोर्ट के डरावने निष्कर्ष बताते हैं कि जयपुर के कई शहरी और औद्योगिक इलाकों का भू-जल अब सिर्फ खत्म पानी ही है, बल्कि वह फ्लोराइड और नाइट्रेट के अत्यधिक रिसाव के कारण जहरीला और पीने के लिए असुरक्षित हो चुका है। जयपुर का जल संरक्षण केवल पेड़ के नीचे बैठकर आसू बहाने या हर साल पांच जून को एक औपचारिक कार्यशाला आयोजित करने से नहीं

होगा। इसके लिए कड़े कानूनी और नीतिगत फैसलों की जरूरत है। नगर निगम के साथ ही राज्य सरकार को भी अब कड़े कदम उठाने होंगे ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। भवन निर्माण उप-नियमों के तहत जयपुर की हर नई और पुरानी व्यावसायिक और आवासीय इमारत में वर्षा जल संचयन को केवल कागजी नक्शों में नहीं, बल्कि जमीन पर अनिवार्य किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। सरकार को अपने भारी-भरकम बजट का एक बड़ा हिस्सा जयपुर की परित्यक्त बावडियों और जोहड़ों की गाद निकालने और उन्हें पुनर्जीवित करने में लगाना चाहिए। इतिहास गवाह है कि दुनिया की बड़ी-बड़ी और महान सभ्यताएँ सोने या हथियारों की कमी से नहीं, बल्कि पानी की कमी के कारण नेस्तनाबूद हुईं। यदि हम आज भी इस भीषण हकीकत को देखकर कागजी आंखें मूंद रहे हैं, तो यकीन मानिए, अगला विश्व युद्ध सीमाओं के लिए नहीं, बल्कि पानी की आखिरी बोतल के लिए लड़ा जाएगा।

कंक्रीट के आलीशान मकान, चमचमती गाड़ियाँ और तिजोरियों में बंद पैसा आपको प्यास नहीं बुझा पाएँगे। प्रकृति हमें अपनी गलतियों सुधारने का आखिरी और अंतिम मौका दे रही है। यदि इस पर्यावरण दिवस केवल पेंडू के नीचे बैठकर आसू बहाने या हर साल पांच जून को एक औपचारिक कार्यशाला आयोजित करने से नहीं

होगा। इसके लिए कड़े कानूनी और नीतिगत फैसलों की जरूरत है। नगर निगम के साथ ही राज्य सरकार को भी अब कड़े कदम उठाने होंगे ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। भवन निर्माण उप-नियमों के तहत जयपुर की हर नई और पुरानी व्यावसायिक और आवासीय इमारत में वर्षा जल संचयन को केवल कागजी नक्शों में नहीं, बल्कि जमीन पर अनिवार्य किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। सरकार को अपने भारी-भरकम बजट का एक बड़ा हिस्सा जयपुर की परित्यक्त बावडियों और जोहड़ों की गाद निकालने और उन्हें पुनर्जीवित करने में लगाना चाहिए। इतिहास गवाह है कि दुनिया की बड़ी-बड़ी और महान सभ्यताएँ सोने या हथियारों की कमी से नहीं, बल्कि पानी की कमी के कारण नेस्तनाबूद हुईं। यदि हम आज भी इस भीषण हकीकत को देखकर कागजी आंखें मूंद रहे हैं, तो यकीन मानिए, अगला विश्व युद्ध सीमाओं के लिए नहीं, बल्कि पानी की आखिरी बोतल के लिए लड़ा जाएगा।

कंक्रीट के आलीशान मकान, चमचमती गाड़ियाँ और तिजोरियों में बंद पैसा आपको प्यास नहीं बुझा पाएँगे। प्रकृति हमें अपनी गलतियों सुधारने का आखिरी और अंतिम मौका दे रही है। यदि इस पर्यावरण दिवस केवल पेंडू के नीचे बैठकर आसू बहाने या हर साल पांच जून को एक औपचारिक कार्यशाला आयोजित करने से नहीं

होगा। इसके लिए कड़े कानूनी और नीतिगत फैसलों की जरूरत है। नगर निगम के साथ ही राज्य सरकार को भी अब कड़े कदम उठाने होंगे ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। भवन निर्माण उप-नियमों के तहत जयपुर की हर नई और पुरानी व्यावसायिक और आवासीय इमारत में वर्षा जल संचयन को केवल कागजी नक्शों में नहीं, बल्कि जमीन पर अनिवार्य किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। सरकार को अपने भारी-भरकम बजट का एक बड़ा हिस्सा जयपुर की परित्यक्त बावडियों और जोहड़ों की गाद निकालने और उन्हें पुनर्जीवित करने में लगाना चाहिए। इतिहास गवाह है कि दुनिया की बड़ी-बड़ी और महान सभ्यताएँ सोने या हथियारों की कमी से नहीं, बल्कि पानी की कमी के कारण नेस्तनाबूद हुईं। यदि हम आज भी इस भीषण हकीकत को देखकर कागजी आंखें मूंद रहे हैं, तो यकीन मानिए, अगला विश्व युद्ध सीमाओं के लिए नहीं, बल्कि पानी की आखिरी बोतल के लिए लड़ा जाएगा।

कंक्रीट के आलीशान मकान, चमचमती गाड़ियाँ और तिजोरियों में बंद पैसा आपको प्यास नहीं बुझा पाएँगे। प्रकृति हमें अपनी गलतियों सुधारने का आखिरी और अंतिम मौका दे रही है। यदि इस पर्यावरण दिवस केवल पेंडू के नीचे बैठकर आसू बहाने या हर साल पांच जून को एक औपचारिक कार्यशाला आयोजित करने से नहीं

होगा। इसके लिए कड़े कानूनी और नीतिगत फैसलों की जरूरत है। नगर निगम के साथ ही राज्य सरकार को भी अब कड़े कदम उठाने होंगे ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। भवन निर्माण उप-नियमों के तहत जयपुर की हर नई और पुरानी व्यावसायिक और आवासीय इमारत में वर्षा जल संचयन को केवल कागजी नक्शों में नहीं, बल्कि जमीन पर अनिवार्य किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। सरकार को अपने भारी-भरकम बजट का एक बड़ा हिस्सा जयपुर की परित्यक्त बावडियों और जोहड़ों की गाद निकालने और उन्हें पुनर्जीवित करने में लगाना चाहिए। इतिहास गवाह है कि दुनिया की बड़ी-बड़ी और महान सभ्यताएँ सोने या हथियारों की कमी से नहीं, बल्कि पानी की कमी के कारण नेस्तनाबूद हुईं। यदि हम आज भी इस भीषण हकीकत को देखकर कागजी आंखें मूंद रहे हैं, तो यकीन मानिए, अगला विश्व युद्ध सीमाओं के लिए नहीं, बल्कि पानी की आखिरी बोतल के लिए लड़ा जाएगा।

कंक्रीट के आलीशान मकान, चमचमती गाड़ियाँ और तिजोरियों में बंद पैसा आपको प्यास नहीं बुझा पाएँगे। प्रकृति हमें अपनी गलतियों सुधारने का आखिरी और अंतिम मौका दे रही है। यदि इस पर्यावरण दिवस केवल पेंडू के नीचे बैठकर आसू बहाने या हर साल पांच जून को एक औपचारिक कार्यशाला आयोजित करने से नहीं

-मणिमाला शर्मा  
वरिष्ठ पत्रकार और विश्लेषक

## “काँकरोच जनता पार्टी”.....डरना जरूरी नहीं है



राम निवास बैरवा

भारतीय उप महाद्वीप में कई देश हो सकते हैं, परन्तु सभी की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ लगभग एक जैसी ही हैं। इस उप-महाद्वीप के आंदोलन भी लगभग एक समान हैं। श्रीलंका में और बाद में बांग्लादेश में युवाओं का कथित आंदोलन जहाँ पुरानी राजनीतिक पार्टियों के हाथों चला गया, वहीं नेपाल में एक नई पार्टी बनाकर सत्ता प्राप्त की, लेकिन कुछ मूलभूत समस्याओं के सुधारवादी उपायों के अलावा नेपाल में और कोई खास परिवर्तन नहीं किए जा सके।

भारत में भी उन्हीं समस्याओं को लेकर आम आदमी पार्टी बनी, और दिल्ली में सरकार बनाकर केंद्र में बैठी भारतीय जनता पार्टी की सरकार की आँख की किरकिरी बनी। परिणाम किसी से छुपा नहीं है। वहाँ के मुख्यमंत्री सहित कई मंत्रियों को जेल भेजा गया, बिना किसी प्रमाणित अपराध के। इसी से सीख लेकर तमिलनाडु में परम्परागत द्रमुक और अनादम्युक की रसाकत्सकी के बीच भाजपा ने फिल्म अभिनेता विजय थलपति (सी. जोसेफ विजय) को आगे करके उसकी टोबीके (Tamilaga Vettri Kazhagam TVK) नाम की पार्टी के जरिए तमिलनाडु की मजबूत पार्टियों को समाप्त करने की कोशिश की और सफल रही।

इसी बीच एक मामूली सी बात को लेकर भारत के मुख्य न्यायाधीश सूर्यकान्त ने व्यक्तिगत रूप से उलाहना देने वाले शब्द ‘काँकरोच’

का इस्तेमाल करके पूरे बेरोजगार युवाओं को ‘काँकरोच’ और ‘परजीवी’ कहकर उसे एक सामूहिक गाली में बदल दिया। “आम आदमी पार्टी” के एक पुराने कार्यकर्ता अभिजीत दीपके ने मुख्य न्यायाधीश द्वारा दी गई उस गाली को एक व्यंग के रूप में “काँकरोच जनता पार्टी” के नाम से सोशल मीडिया पर प्रसारित कर दिया। देखते ही देखते करोड़ों लोगों ने सोशल मीडिया पर समर्थन देकर उसे एक राजनीतिक पार्टी में बदल दिया। दीपके अरविंद केजरीवाल की तरह आम सभाएँ नहीं कर सकते थे, लेकिन शीघ्रता से प्रचारित-प्रसारित होने वाले सोशल मीडिया के माध्यम से करोड़ों लोगों के बीच पहुँच बना ली। जैसा कि हमेशा ही होता है, सत्कार उस व्यक्ति या उन लोगों को व्यक्तिगत निशाना बनाना शुरू कर दिया है- जैसे कि युवा-बेरोजगार इस देश के दुश्मन हों और पाकिस्तान में पुश्तून भारत सरकार के खिलाफ कोई राजनीतिक अभियान चला रहे हों।

“युवा कौन होते हैं और उनका भविष्य क्या है?” दरअसल युवक आवादी का वह हिस्सा होते हैं जिनको देश के भावी कर्णधार बताने उनकी झूठी तारीफ की जाती है। पर वे सत्ताधारी लोगों और उनकी पार्टियों की नजरों में वही होते हैं जैसा सत्ता के एक प्रमुख अंग, मुख्य न्यायाधीश ने उन्हें संबोधित किया है, ‘काँकरोच’, ‘परजीवी’।

वे परजीवी, काँकरोच क्यों हैं? कृषि अनगिनत बेरोजगारों को अपने में समाहित कर लेती है उन्हें भूखा नहीं मरने देती है। परन्तु आधुनिक और मॉडर्न शिक्षा पद्धति बेरोजगार पैदा करने की फैक्ट्रियाँ बनी हुई हैं। वे युवा हैं, बेरोजगार हैं, परन्तु वे किसान नहीं हैं, वे मजदूर नहीं हैं, उनकी राष्ट्रीय उत्पादन में कोई भागीदारी नहीं है, उनकी राष्ट्रीय उत्पादन में कोई भूमिका नहीं होती है, इसलिए वे परजीवी हैं, इसलिए वे काँकरोच हैं। जब वे स्कूल, कॉलेजों नामक फैक्ट्रियों से बाहर निकलते हैं तो वे न तो युवा होते हैं न ही देश के कर्णधार। वे सिर्फ बेरोजगार होते हैं

जिन्हें रोजगार की तलाश है। और रोजगार देने वालों के लिए वे हिन्दू होते हैं, रोजगार देने वालों के लिए वे मुसलमान होते हैं, रोजगार देने वालों के लिए वे ईसाई और आदिवासी होते हैं। इससे भी आगे बढ़कर वे अनुसूचित जाति के होते हैं, वे अनुसूचित जनजाति के होते हैं, रोजगार देने वालों के लिए वे बनिया, गुप्ता, माहेश्वरी होते हैं। कहीं वे यादव होते हैं तो कहीं चमार होते हैं। लेकिन रोजगार देने वालों के लिए वे ‘कर्मचारी’ नहीं होते हैं, रोजगार देने वालों के लिए वे मजदूर नहीं होते हैं। वे सिर्फ नाकरी मांफे वाले होते हैं। इसीलिए वे एक वेकेंसी के पीछे सैकड़ों हजारों की संख्या में ऐसे दौड़ते हैं.... ऐसे दौड़ते हैं... जैसे काँकरोच।

जब युवाओं की, देश के भावी कर्णधारों की कोई पहचान ही नहीं है तो वे सामन्तवाद के ताने-बाने से ही अपनी पहचान बनाते हैं। यही पहचान उन्हें काँकरोच बनाती है, यही पहचान उन्हें परजीवी बनाती है, जिन्हें परजीवियों की सत्ता अपने मनमुत्तलक दालकर उनका इस्तेमाल करती है। सरकार की नजरों में वे बेवकूफ बेरोजगार हो परन्तु वे दया के पात्र होते हैं, परजीवी हैं। शुक्र है न्यायाधीश महोदय ने उनको काँकरोच, परजीवी ही तो पहचान दी; आस्था कॉलेजियम के अनुसार तो वे अदालत के अदब तक नहीं जाते।

आखिर वे अदाब कहाँ से सीखेंगे, जब रोजगार देने के नाम पर ली जाने वाली परीक्षाएँ एक मजाक बन कर रह जाती हैं। वैसे तो हर साल, कई वर्षों से परीक्षाओं के पेपर समय से पहले ही लीक कर दिये जाते हैं और नौकरियों के लिए चयन प्रक्रियाएं अंध में लटकती की जाती हैं। इसी वर्ष, 2026 में नीट-यूजी की परीक्षाओं के पेपर लीक करवा के लाखों डॉक्टर- इंजिनियर बने का सपना देखने वाले बेरोजगारों को काँकरोच- परजीवी बनाने का ही तो तरीका है।... और, ग्लोबलाइजेशन की कई शर्तों में से एक शर्त यही तो है कि प्रशासनिक खर्चों में 30 प्रतिशत की कमी करना होगा जिनमें नौकरियों को समाप्त करना भी शामिल है। नौकरियों कैसे खतम हों, खाली पदों का लालच दो पर उन्हें

पूरा नहीं करो। नौकरियों के इंतजार में युवा ओथरपुत्र होकर राजनीतिक दलों और माफियाओं के लिए काम करने वाले बनने को मजबूर होंगे ही।

सी.बी.एस.ई. के एक लडके वेदांत ने जब पूरी सरकार और सी.बी.एस.ई. के परीक्षा तंत्र और नकारकियों को उजागर किया तो पूरी सरकार, उसका मीडिया, पूरा सी.बी.एस.ई. तंत्र उस बच्चे को गलतसाबित करने की कोशिशें की और उनका ब्रह्मास्त्र भी चला कर उसे पाकिस्तानी कद दिया। युवाओं में सरकार को गलत साबित करने की पूरी क्षमता भी है, परन्तु सरकारी तंत्र के सामने बेबस हो रहे जाते हैं। जब वे सरकारी तंत्र को गलत साबित हैं तो वे महज युवा नहीं होते हैं, बल्कि वे देश की चिंता कर रहे होते हैं, वे एक इमानदार और जिम्मेदार सरकारी तंत्र की चाहत रखते हैं। उनकी इसी चाहत को खतम करने के लिए, उनकी इसी चाहत को जनता की, मजदूरों की, किसानों की अग्रिम वैचारिक पंक्ति नहीं बनने देने के लिए ही उन्हें काँकरोच और परजीवी की दिया जाता है।

ऐसे में राजनीतिक पार्टियाँ उन्हें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आदिवासी, भंगी, चमार, यादव, जाट, ब्राह्मण, बनिया बनाकर उनका इस्तेमाल करती हैं। राजनीतिक पार्टियों के इस्तेमाल किए जाने के लिए पहली शर्त उन युवाओं का बेरोजगार होना जरूरी है। दूसरी शर्त, उनकी क्षमता पर निर्भर करता है कि वे संपत्तियों कितनी तोड़-फोड़ कर सकते हैं, कितना हंगामा कर सकते हैं, कितनी भीड़ इकट्ठा सकते हैं और कितना पैसा इकट्ठा करके पार्टी फंड के नाम से बड़े-नेताओं को दे सकते हैं और अपनी खुद की आर्थिक स्थिति को भी अच्छी बनाकर अपनी ही जाति, अपने ही धर्म में सम्मानित व्यक्ति बनकर वाई मेंबर, सरपंच, एम.एल.ए, एम.पी. यहां तक कि मंत्री भी बन सकता है और अपने विवेक को अपनी बुद्धि को मेजें थपथपाने और हाथ खड़ा करने में प्रकट करता है।

लेकिन किसी युवा को न तो मजदूर बनने दिया जाता है और न ही किसान। वे अस्थायी मजदूर बन सकते हैं। उनके जीवन में सामाजिक स्थायित्व नहीं आ पाता। इसी कारण वे किसी भी सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक परिवर्तन के संवाहक नहीं बन पा रहे हैं। युवाओं आंदोलन कांति में नहीं बदलते हैं। मजदूरों के, किसानों के आंदोलन अंततः राजनीतिक कांति में बदल जाते हैं, जिनका पहला काम अर्थव्यवस्था को बदलना होता है। फ्रांस का 1793 का किसान आंदोलन “रोटी मांगने वाले किसान केक क्यों नहीं खाते” जैसे अबोध बच्ची के कथन को कटाक्ष मानकर फ्रांस के पूरे राजपरिवार को खतम कर चुका था। “काँकरोच-परजीवी” का कथन अबोध बच्ची जैसा कथन नहीं था, और ना ही मजदूरों-किसानों के लिए था बल्कि एक पीढ़ी, युवा पीढ़ी पर पूरे सरकारी तंत्र द्वारा किया गया कटाक्ष था।

संविधान के अन्तर्गत निर्मित सरकार और उसके विभिन्न अंगों का ढांचा दरअसल बच्चों और युवाओं का संरक्षक होना चाहिए। लेकिन कोई भी सरकारी तामशाही और संवैधानिक प्राधिकारी उन युवाओं का संरक्षक नहीं बन कर उन्हें तिरस्कृत करने में लगा है। पीढ़ियों के सामाजिक अन्तर को GEN-Z (जनेरेशन-जेड) कहकर उनकी ब्रांडिंग कर रहे हैं जबकि भारत के युवाZEN-G (Zen-Generation) यानि कि शांत और गम्भीर पीढ़ी (जेन-जनेरेशन) बनी हुई है और संवैधानिक व्यवस्था से अपनी अपेक्षाएं बनाए रखे हुए हैं। वे अभी आखरी पीढ़ी (Gen-Z) नहीं बनना चाहती, यह बात सरकारों और संवैधानिक पदाधिकारियों को समझ लेनी चाहिए।

नीट पेपर लीक मामले की सुनवाई के दौरान जस्टिस पी.एस. नरसिम्हा और जस्टिस आलोक आराधे की पीठ ने टिप्पणी की कि “क्षमता किसी व्यक्ति में नहीं, बल्कि संस्था में होती है। आपको इसी के लिए तैयारी करनी है।” फिर ‘काँकरोच’ और ‘परजीवी’ कहने वाले जस्टिस सूर्यकांत एक व्यक्ति थे या संस्था? -राम निवास बैरवा,  
पूर्व क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्ता।